कंठ एवं वाद्य संगीत में पारस्परिक सम्बन्ध : ऐतिहासिक और समकालीन विश्लेषण

डॉ. संगीता गोरंग
एसोसियेट प्रोफेसर, संगीत विभागाध्यक्षा
कुमारी विद्यावती आनंद
डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय, करनाल

सारांश :
मनुष्य के अन्तःकरण में स्थित हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति के लिए ललित कला सर्वोत्कृष्ट साधन है। ललित कलाएँ मुख्य रूप से पाँच मानी गई है। चित्रकला, काव्यकला, मूर्तिकला, संगीतकला, भवननिर्माण कला। इन पाँचों ललित कलाओं में संगीत को सबसे उच्चकोटि की कला माना गया है क्योंकि इसका रूप अन्य कलाओं की अपेक्षा सूक्ष्म है तथा जिसे मात्र श्रवणेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। पं. शारंगदेव जी ने अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकार में संगीत की परिभाषा देते हुए कहा हैः–'गीतं वाद्यं च नृत्यं त्रयंसंगीतमुच्यतेः। अर्थात् संगीत कला के अन्तर्गत गायन वादन तथा नृत्य का समावेश किया गया है। वह तीनों कलाएँ एक दूसरे से स्वतन्त्र होने पर भी एक दूसरे के साहचर्य के रूप में उभरी है तथा आदि काल से एक दूसरे पर आश्रित है। लगभग संगीत सम्बन्धी सभी शास्त्र ग्रन्थों में इन तीनों कलाओं के परस्पर सामजस्यता की चर्चा मिलती है। नाटयशास्त्र के अनुसारः "गीत नाटक के प्रमुख अंगों में से अन्यतम है तथा वादन एवं नर्तन उसके अनुगामी है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'गीत वाद्य नृत्य तथा नाट्य का उल्लेख सहचरी कलाओं के रूप में हुआ। विष्णु धर्मोतर पुराण में 'वाद्य तथा नृत्य को गीत का अनुवर्ती माना गया है तथा नृत्यकला के सम्यक् अध्ययन के लिए गीत तथा वाद्य का ज्ञान नितान्त आवश्यक निर्दिष्ट है।

कई विद्वान नृत्यकला में अभिनय पक्ष की बहुलता होने के कारण उसे एक स्वतन्त्र कला के रूप में स्वीकार करते हैं। परन्तु कंठ एवं वाद्य संगीत तो एक दूसरे से अभिन्न लय में जुड़े हुए मानते है। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। विभिन्न काल खंडों में इनकी उत्पति एवं विकास का क्रम साथ–साथ होता आया है। प्राचीन काल से ही देवी देवताओं के साथ कोई न कोई वाद्य अभिन्न रूप से जुड़ा मिलता है जैसे– शिवजी के हाथ में डमरू, सरस्वती के हाथ में वीणा आदि।

शिव पुराण के मतानुसार नारद जी ने अनेक वर्षो तक योग साधना की। तब शंकर जी ने उन पर प्रसन्न होकर संगीत कला प्रदान की। पार्वती जी की शयन मुद्रा को देखकर 'शिवजी' ने उनके अंग प्रत्यंगों के आधार पर 'वीणा' बनाई और अपने पाँच मुखों से पाँच रागों की उत्पति की। तत्पश्चात छठा राग पार्वती जी के श्रीमुख से उत्पन्न हुआ। शिव जी के पूर्व, पश्चिम, उतर, दक्षिण से क्रमशः भैरव, हिण्डोल, मेध, दीपक और श्री राग प्रकट हुए एवं पार्वती जी द्वारा कैशिक राग की उत्पति हुई।

इस उपरोक्त उदित विवरण के पढ़ने से हमें ज्ञात होता है कि देवी–देवताओं के समय गायन एवं वाद्यों का सामूहिक प्रयोग अति प्राचीन काल से होता चला आ रहा है।

कंठ एवं वाद्य संगीत में पारस्परिक सम्बन्ध तो अति प्राचीन काल से ही चली आ रही है। सम्भवतः इन दोनों कलाओं का उद्‌गम एवं विकास साथ–साथ हुआ। शुरू–शुरू में इसका स्वरूप निस्सन्देह अस्पष्ट एवं अविकसित होगा क्योंकि उस समय का संगीत आधुनिक संगीत की तरह शास्त्रोक्त एवं परिभाषित नहीं होगा और न ही उन लोगों ने संगीत या लोक संगीत को परिभाषा दी होगी। आदि मानव अपने अन्तःकरन में स्थित मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए हा हा हू हू या हो हो आदि अस्पष्ट शब्दों में कुछ न कुछ उच्चारते होंगे। इसके साथ साथ प्रकृति में आसानी से मिलने वाले मरे जानवरों के सींग या शंख आदि वाद्यों को फूँक कर भी वह अपने हृदयगत भावों को शान्त करते होंगे। इन्हीं को हम गायन एवं वादन की अविकसित अवस्था कह सकते हैं। मानव ने आदि काल से ही अपने अन्तःकरण में स्थित लय को हाथ के द्वारा ताल देकर या पैरों की थिरकन से अभिव्यक्त किया होगा। जब कोई भी साज नहीं था तो मनुष्य ने हाथ से ताली देकर लय ताल का काम लिया

होगा। इसका प्रभाव हमें आजकल के कई लोकगीतों में भी मिलता है जिनके हाथ से ताली बजाकर गाया जाता है। मनुष्य के अन्दर स्थित आन्तरिक लय का प्रमाण हमें लोक गायकों द्वारा प्रस्तुत गायन वादन को देखने से मिलता है कि उन्होंने संगीत में किसी प्रकार की विधिवत तालीम भी नहीं ली होती है और न ही लय ताल की परिभाषा का पता होता है परन्तु वह अन्जाने में ढोलक या नगाड़े के उपर ऐसी ऐसी विकट लयकारियों का काम दर्शाते हैं कि अच्छे से अच्छा संगीतकार भी सोचकर विस्मय में पड़ जाता है। यह सब आन्तरिक लय का ही प्रभाव है। धीरे–धीरे मनुष्य को ताल वाद्य बनाने की आवश्यकता महसूस हुई होगी। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भू–दुदुम्भी का उल्लेख आता है जिसका प्रयोग आदि मानव नाच गान या खुषी के अवसर पर करते होंगे। वह जब शिकार मार कर लाते होंगे तो उस जानवर की खाल को जमीन में गड्डा खोदकर गाड़ देते होंगे तथा उसमें हाथ के आघात से या किसी डन्डे के आघात से चोट करते होंगे।

लय दर्शाने के लिए एक अन्य वाद्य 'अग्सा' का उल्लेख भी आता है। उमेष जोशी के अनुसार–'इन्होंने पत्थर के दो चौकोर मंजीरे की शक्ल के वाद्यों का निर्माण किया था, जिनको यह गाते वक्त बजाया करते थे। इस पाषाण वाद्य का नाम 'अग्सा' था।

इस तरह हम कल्पना के आधार पर ही अनुमान लगा सकते हैं क्योंकि इन बातों की पुष्टि के लिए हमारे पास कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं हे।

प्रागैतिहासिक काल में कंठ एवं वाद्य संगीत का विकासः–

इस काल के सम्बन्ध में कोई सूत्रबद्ध ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। यह सभ्यता वैदिक काल से पूर्व की सभ्यता है जिसके अवषेश सिन्धु तथा हड़प्पा की खुदाईयों से प्राप्त अवषेशों के आधार पर हुआ है। 'हड़प्पा में उपलब्ध एक चित्र में एक पुरुष को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। एक अन्य स्थान पर ढोलक की आकृति का वाद्य एक मृग्मयी मूर्ति की जिवहा से लटकता हुआ दिखलाया गया है। झांझ अथवा करताल के समान वाद्य भी यहाँ उपलब्ध है।

इन कलात्मक आकृतियों से यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन जीवन में संगीत का प्रचलन था तथा धार्मिक एवं लौकिक समारोहों में गीत, वाद्य तथा नृत्य द्वारा लोगों का मनोरंजन किया जाता था। गीत तथा वाद्यों के साथ ढोल, दुन्दुभी जैसे वाद्यों से संगीत की संगति की जाती थी।

वैदिक युग में कंठ एवं वाद्य संगीत का विकास

ऋग्वेद में गीत, वाद्य और नृत्य तीनों के सम्बन्ध में अनेक उल्लेख मिलते हैं। शांखायन ब्राह्मण के अनुसार तीनों शिल्पों का प्रयोग (गायन, वादन, नृत्य) प्रायः अभिन्न साहचर्य रूप में प्राप्त होता हैः–" त्रिवेदे शिल्पं नृत्यं गीतं वादिताभिति" (29–5)

"ऋग्वेद में गीत के लिए गीर, गातु गाथा, गायन, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। ""ऋग्वेद काल में गायन के साथ ही वाद्यों का निरन्तर साहचर्य रहा है। ऋग्वेद में निम्न वाद्यों के उल्लेख पाए जाते हैं, जैसे दुन्दुभि, बाण, नाड़ी, वेणु, कर्करी, गर्गर, गोवा पिंग तथा आथारि।"

प्राचीन काल से ही मानव कंठ को भी वाद्यों की श्रेणी में सोचकर इसे ईश्वर निर्मित वाद्य माना है। महर्षि भरत ने संगीत का उपकरण होने के कारण कंठ ध्वनि को वाद्यों के चतुर्विध वर्गीकरण के अन्तर्गत रखकर पंच महाध्वनियों का वर्णन किया हैः–

"एंक ईश्वरानिर्मित नैसर्गिकम् अन्यच्चतुर्विध मनुष्यानिर्मित चैति पंचप्रकारा– महावाधानाम्।

नारदीय शिक्षा में सामगान के स्वरों की स्थापना वेणुके आधार पर इस प्राकर बताई हैः–

जो साम गायकों का प्रथम संज्ञक स्वर है वह वेणु का मध्यम स्वर है, जो द्वितीय है वह वेणु का गन्धार, तृतीय स्वर वेणु का ऋषभ है चतुर्थ षड़ज है पंचत धैवत है, षष्ठ निषाद है, सप्तम पंचम है।

इन समस्त उद्वरणों पर अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में भी गायन और वादन संगीत एक दूसरे के सहचर रूप में थी।

रामायण काल में कंठ एवं वाद्य संगीत विकास

रामायण काल के बारे में जानने के लिए महर्षि बाल्मीकि कृत रामायण महत्वपूर्ण स्रोत है। रामायण में गन्धर्व एवं अप्सराओं का उल्लेख काफी बार हुआ है। गन्धर्व लोग गायन तथा वीणा वादन करते थे जबकि अप्सराएं इनके साथ नृत्य प्रदर्शन करती थी। अलौकिक पुरुषों के जन्म तथा विवाह आदि के अवसर पर इनके संगीत का आयोजन किया जाता था। 'राम चन्द्र के जन्म तथा विवाह पर देव दुन्दुभि बजाने लगे तथा गन्धर्व एवं अप्सराओं का क्रमशः गान तथा नृत्य होने लगा। ऐसा उल्लेख रामायण में है। संगीत को व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले लोगों में गायक सूत, मागध, बन्दी तथा वारांगनाओं आदि का समावेश था।

इस तरह हम देखते हैं कि रामायण काल में भी गायन एवं वादन संगीत एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थी और एक–दूसरे की पूरक थीं।

महाभारत में काल में कंठ एवं वाद्य संगीत में परस्पर सामंजस्य

महर्षि व्यासकृत 'महाभारत' महाकाव्य भारतीय साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती है। इसमें संगीत के दिव्य कलाकारों के रूप में गन्धर्व तथा किन्नरों का उल्लेख आता है। गन्धर्व, किन्नर तथा दिव्य पुरुषों के निवास स्थान पर गीत तथा तूर्यवाद्यों का स्वर सदैव गुंजायमान रहता था।

महाभारत काल में गायन तथा वादन और नृत्य जनजीवन के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ था। महापुरुषों के नगर निर्गमन के अवसर पर समुचित संगीत से विदाई का आयोजन किया जाता था। ऐसे ही समय पर गीत के साथ पणव, शंख आदि का वादन किए जाने का उल्लेख मिलता है।

"देवराज इन्द्र की सभा में अर्जुन का गीत, वाद्य, नृत्य से स्वागत किया गया था। जिसमें तुम्बुरू प्रभृति गन्धर्वों ने वीणादि वाद्यों के नाच गान किया था तथा मेनका, रम्बा, उर्वशी आदि अप्सराओं ने भावपूर्ण नृत्य किया था।" महाभारत में अर्जुन को गान्धर्व विशारद बतलाया गया है। विश्वाश्तु गन्धर्व की परम्परा से गीत, वादन, नृत्य तथा ताल की समस्त शिक्षा उन्हें प्राप्त थी।

मध्यकाल में कंठ एवं वाद्य संगीतः–

11वीं शताब्दी में मुसलमानों के आगमन से भारतीय संगीत में परिवर्तन होने लगा। मुसलमानों द्वारा संस्कृत भाषा के न समझने पर भी उन्होंने गायन वादन में अच्छी उन्नति की। गायकों, वादकों का राज्याश्रय मिलने लगा।

अल्लाउदीन खिलजी के दरबारी कवि एंव संगीतज्ञ अमीर खुसरों ने अनेक नवीन रागो, वाद्यों, तालों तथा शैलियों की रचना की।

गीतों के प्रकार में :– गजल, कव्वाली, तराना, ख्याल

राग :–इमन, जिल्फ, सरपर्दा, यमन, रात की पूरिया, बरारी, तोड़ी, पूर्वी इत्यादि

तालेः–झूमरा, आड़ा चौताल, सूलताल, पश्तो, सवारी।

वाद्यः– सितार, तबला आदि।

इससे पता चलता है कि गायन वादन के क्षेत्र में इस काल में बहुत उन्नति हुई। पं. शारंगदेव कृत 'संगीतरत्नाकर' इसी काल में रच गया जिसमें गायन एवं वादन संगीत पर विस्तृत जानकारी मिलती है।

मुगल बादशाह अकबर के शासन काल में तो संगीत कला की सर्वोन्मुख उन्नति हुई तथा इस काल को संगीत के इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से याद किया जाता है। तानसेन एवं वैजु बावरा इस काल के कोटि के संगीतज्ञ थे। सुप्रसिद्ध विद्वान आरसन ली ने ष्।ैवतज ।बबवनदज व िप्दकपं डनेपबष् में लिखा है–'मुगल दरबार का तानसेन बड़ा चमत्कारी गायक था। उसने दीपक राग गाकर बादशाह अकबर को आश्चर्य सागर में डूबो दिया था। इसी प्रकार वह वीणा वादन से सुरों को घुला लिया करते थे।

वैजु बावरा के विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद है क्योंकि 'आयने अकबरी' तक में हमें वैजु का नामोल्लेख नहीं मिलता। कई लोग वैजु को राजा मान सिंह तोमर का दरबारी संगीतज्ञ बताते हैं। प्रसिद्व इतिहासकार प्रभुत्व किलाड के अनुसार'– "बैजुनाथ गायक राजा मानसिंह तौमर के समकालीन थे, वे उनके दरबार में प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय गायक थे। वीणा वादन पर उनका अच्छा अधिकार था।"

मुगलवंश के अन्तिम बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले गाने बजाने दोनों में निपुण था। उसके दरबारी संगीतज्ञ सदारंग अदारंग ने ख्याल की बन्दिशें रचकर अपने शिष्यों के माध्यम से ख्याल गायकी का प्रचार करवाया। सुप्रसिद्ध ऐतिहासकार वर्नाड ने अपनी पुस्तक 'दा सर्वे ऑफ इन्डियन म्यूजिक' में लिखा हैः– "मुहम्मद शाह रंगीले के समय में सदारंग और अदारंग ने खयालों के निर्माण का अद्वितीय कार्य किया। ये दोनों संगीतज्ञ वीणा वादन में बड़े कुशल थे। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि कंठ एवं वाद्य संगीत में पारस्परिक सम्बन्धता अतिप्राचीन काल से ही चली आ रही है।

आधुनिक कालः–

वाद्यों का प्रयोग आदि काल से ही गायन एवं नर्तन की संगति के लिए विशेष रूप से हुआ है। परन्तु आधुनिक काल में वाद्यों में भी अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व बनाया हैं। बहुत से संगति करने वाले वाद्य 'एकल वादन' के रूप में उभर कर आए है। शहनाई, बाँसुरी तथा सन्तूर जैसे लोकवाद्य जोकि लोक गायकों या नर्तकों की संगति करने के लिए प्रयोग में लाए जाते थे अब 'एकल वादन' के रूप में शास्त्रीय संगीत में स्थान पर चुके हैं। परन्तु यदि हम इन सब वार्द्यो की वादन शैली का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि लगभग सभी वाद्य गायकी का ही अनुकरण करते हैं। सितार वाद्य में मसीतखानी और रज़ाखानी गतों के आधार पर मिजराब के बोलों का छन्दों के रूप में अधिक प्रयोग किए जाने के कारण तन्त्रकारी बाज गायन शैली से थोड़ा सा भिन्न हो गया है। अन्यथा आलापजोड़ का काम तो वह भी धुपद गायकी के समान करते हैं।

आधुनिक काल में प्राचीन वाद्यो का चतुर्विध वर्गीकरणः–

1. **अवनद्व वाद्यः–** आधुनिक काल में अवनद्व वार्द्यो के अन्तर्गत ढोलक, ढोल, डमरू, हुडक, डफ, नगाड़ा, मृदंग, तबला, दुक्कड़, तथा विदेशी वार्द्यो में कांगो, वांगो, ड्रम, साईड्रम इत्यादि आते हैं।
2. **तत वाद्यः–**तत वाद्यो में एकतारा, सारंगी, रावण हत्था, सितार, सरोद, वीणा, सारंगी, वायलिन, इतराज, मैडोलियन, गिटार, सन्तूर इत्यादि।
3. **सुषिर वाद्यः–**सुषिर वाद्यो की श्रृंखला में शंख, अलगोजा, बाँसुरी, शहनाई, नरसिंघा, हारमोनियम, सैक्साफोन, कलारनेट, ट्रमपेट इत्यादि।
4. **घन वाद्य :–**घन वाद्यों में कांसी, खड़ताल, घंटा, घड़ियाल, घुंघरू, चिमटा आदि।

वाद्यो के इस चतुर्विध वर्गीकरण में सुषिर तथा तत्त वाद्य कंठ संगीत से बहुत नजदीक है। सुषिर वाद्यो में विशेष रूप से शहनाई, बाँसुरी, हारमोनियम तथा तत वार्द्यो में सारंगी, वायलिन तथा इसराज साज तो गायकी का हूबहू अनुकरण कर सकने मे समर्थ है।

मुख्य गायन शैलियों पर वाद्यों का वर्गीकरणः–

उतरीय भारतीय संगीत में प्रमुख रूप से चार प्रकार की गायन शैलियाँ हैः–

1. शास्त्रीय संगीत एवं उपशास्त्रीय संगीत
2. सुगम संगीत
3. लोक संगीत
4. चित्रपट संगीत

इन चारों प्रकार की संगीत शैलियों में वाद्यों का विषेष महत्व है। इनका वर्गीकरण इस निम्न प्रकार से करेंगेः–

1. शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय कंठ संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यः–

शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत ध्रुपद, धमार ख्याल, ठुमरी, टप्पा आदि गायन शैलियाँ आती हैं। इनके साथ तानपुरा, तबला, हारमोनियम, सारंगी, इसराज, दिलरुबा, स्वरमंडल, वायलिन आदि वाद्यों की संगति यथा शैली और कलाकार की इच्छा अनुसार की जाती है जैसेः– ध्रुपद, घमार आदि के साथ–साथ वाद्य के रूप में परवावज ही बजेगा। यदि किन्हीं परिस्थितियों में तबला ही बजाना पड़े तो भी उसे खुले बोलों द्वारा बजाया जाएगा। ख्याल गायन के साथ ताल वाद्य के रूप में तबला ही होगा। तानपुरा एवं हारमोनियम की संगति तो दोनों शैलियों के गायकों के लिए अनिवार्य होगी क्योंकि बिना आधार स्वर स्थापित शास्त्रीय संगीत गाना सम्भव नहीं। परन्तु सारंगी और स्वरमण्डल आदि वाद्यों की संगति कलाकार अपनी इच्छानुसार करता है। इससे गायन में रंजकता बढ़ती है। अच्छे संगीतकार गायकों के कई दोषों को छिपा लेते हैं तथा उनके प्रस्तुतिकरण को उभारते है। बिना किसी वाद्यों के सहयोग से शास्त्रीय संगीत की कल्पना नहीं की जा सकती। कंठ संगीत में वाद्यों के सहयोग से ही पूर्णता तथा रसात्मकता का भाव उत्पन्न होता है।

2. सुगम संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यः–

सुगम संगीत के अन्तर्गत विभिन्न गायन शैलियाँ जैसे – गीत, गजल, भजन, शब्द, कव्वाली, समूह गान आदि आते हैं। इनके साथ तानपुरा तथा हारमोनियम, बाँसुरी, डफ, मंजीरा, खड़ताल, ढोलक, सितार, सरोद, सारंगी, स्वर मण्डल, गिटार आदि वाद्य बनाए जाते हैं। सुगम संगीत के अन्तर्गत आने वाले भजन की कल्पना हम मजीरें, खड़ताल तथा एकतारे के बिना नहीं कर सकते। इसी प्रकार समूहगान में भी वाद्य वृन्द के सहयोग के बिना शब्दों का प्रभाव नहीं बन पाएगा।

3. लोक संगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यः–

विभिन्न प्रान्तों के अपने अपने रीति रिवाजों के आधार पर लोक गीत एवं लोक वाद्य है। परन्तु फिर भी लोक संगीत के अन्तर्गत निम्नलिखित वाद्य अधिक प्रचलित हैः– बाँसुरी, छोटी शहनाई, अलगोजा, डफ, ढोल, ढोलकी, नगाड़ा, दुक्कड, रावण हत्था, एकतारा, ढाडी सांरगी, सिन्धी सारंगी, घंटा, घड़ियाल, झांझ, चिमटा, मजीरा, खड़ताल, घुँघरू आदि। लोक संगीत लय प्रधान है। इसलिए इसमें किसी न किसी ताल वाद्य का समावेश जरूरी होता है। लोक संगीत में तुम्बी एक ऐसा वाद्य है जो आधार स्वर देने तथा लय कायम करने के काम आता है।

4. चित्रपट संगीतः–

चित्रपट संगीत के वाद्यों में उपर वर्णित शास्त्रीय, सुगम एवं लोक संगीत के वाद्यों के अतिरिक्त विदेशी वाद्यों का भी समावेश होता है। चित्रपट संगीत तो पूर्णतया ही वाद्य वृन्द के उपर आधारित रहता है। एक–एक गाने के साथ सैंकड़ों वाद्य बजते हैं। पचास के लगभग तो केवल वायलिन ही बजती हैं। इसमें गाने के शब्दों एवं फिल्म की मांग के अनुकूल वाद्यों के माध्यम से प्रभाव बनाया जाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि बिना वाद्यों की संगति किए कंठ संगीत में पूर्णता नहीं आ सकती।

कंठ एव वाद्य सगीत परस्पर सम्बन्ध :–

1. उच्च कोटि का वादक वही बन सकता है जिसको गायन की भी पर्याप्त समझ हो। जितना सुरीला वह गाएगा उतना ही सुरीला बजा भी पाएगा। गायन न जानने वाला कभी भी सुरीला वादक नहीं बन पाएगा। मेहर के उस्ताद अलालाउदीन खां को सैंकड़ों बन्दिशें याद थी।
2. उस्ताद लोग गायकी की तालीम देते समय कोई न कोई वाद्य की तालीम भी अवश्य देते हैं। तबले का ज्ञान तो प्रायः सभी गायकों वादकों को करना पड़ता है। उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ, उस्ताद अमीर खाँ, उस्ताद अब्दुल करीम खाँ, इन सभी ने पहले सारंगी का रियाज किया था।
3. आज से लगभग 40–50 वर्ष पूर्व सितार वाद्य के पूर्णतया तन्त्रकारी अंग से बजाने का प्रचलन था। यदि कोई भूल से मिज़राब के बोलों को पूर्व निश्चित ढंग से प्रयोग करने में चूक जाता तो उसे त्रुटिपूर्ण मानते थे। यहाँ तक कि मसीतखानी गत में दिर दा दिर दा रा दा दा रा के अतिरिक्त चिकारी लगाना भी कुछ सितार वादक त्रुटिपूर्ण मानते थे। परन्तु उस्ताद विलायत खाँ

जैसे सितारियों ने तो सितार वाद्य को पूर्णयता गायकी अंग में ढालकर अपने घराने की शैली को एक नया मोड़ दिया।

4. जब से एकल वादन का प्रचार हुआ है तब से गायन की सभी शैलियों का अनुकरण वाद्यों में होने लगा है।
5. भारतीय संगीत में श्रुतियों, स्वरों या ध्वनि आदि के विषय में जो भी प्रयोग हुए है यह सब किसी न किसी वाद्य की सहायता से ही हुए है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसके मूल में कंठ संगीत ही निहित था। परन्तु वाद्यों की सहायता के बिना इसका प्रत्यक्षीकरण करना संभव नहीं था जैसेः– भरत ने सारणा चतुष्ट्यी के आधार पर श्रुतियों की समानता असमानता की स्थापना की तथा श्री निवास ने वीणा की सहायता से स्वर स्थापना की।
6. वाद्य संगीत में कई गतें ऐसी भी हैं जिनके मुखड़े के बोल कंठ संगीत की बन्दिश के मुखड़े की तरह ही है। वादक जब भी उस राग विशेष के मुखड़े की सरगम बजाएगा तो अनायास ही उस बन्दिश के मुखड़े के बोल श्रोताओं के मुख से निकल पड़ेगे। जैसेः– भैरवी राग में एक बड़ी प्रचलित ठुमरी की बन्दिश है 'बाजु बन्द खुल खुल जाए

   ग– म – रे –सा––– ग – म –– प– ध प

   बाऽ जुऽ बऽ द ऽ ऽ ऽऽ खु ऽ ल ऽ ऽ खु ऽ ल जा

   इसी प्रकार राग मारू बिहाग में जब तक गायक या वादक 'रसिया हो न जा' कहकर उसकी पारम्पारिक स्वरावली वाले मुखड़े को न गाए बजाए। तब तक लोगों को उस राग के प्रति सन्देह उपजता रहता है। अर्थात् इस राग की बन्दिशें राग सूचक हो गई है जैसेः–

   स म ग –रेस गमे प– मे–प

   रातियाऽ ऽ ऽ होऽ ऽऽ नाऽ। जा
7. सितार वाद्य में झाला बजाने का प्रचलन सम्भवतः कंठ संगीत में प्रस्तुत किए गए तराने के बोलों के आधार पर हुई है क्योंकि तराने की लय भी अतिदुत गति में ही होती है जैसेः
   तराने के बोल :– त न न न, त न न न
   मिज़राब द्वारा तंत्रकारी के बोल :– दा रा रा रा, दा रा रा रा
   तराने के बोल : दी ऽ म त न , दी ऽ म त न
   झाले के बोल : दा डर दा रा, दा डर दा रा
8. कंठ संगीत में कई चीजें वाद्य संगीत की अनुकरण की है। मींड, गमक, कण, कृंतन, गमक आदि सर्वप्रथम वाद्यों पर ही कुशलतापूर्वक बजाए जाते होंगे।
9. कंठ संगीत में तानों के साथ तिहाई लगाने का प्रचलन सम्भवतः ताल वाद्यो से ही आया होगा जैसेः
   सरगम में तिहाईः

   निरे गम पम धप मप गम गरे साऽ

   निरे गरे गऽ निरे गरे गऽ निरे गरे
10. शास्त्रीय कंठ संगीत की गायन शैलियों में से चतुरंग भी एक शैली है जिसमें ख्याल, तराना, सरगम और त्रिवट चार अंग सम्मिलित होते हैं। पहले भाग में गीत के शब्द, दूसरे में तराने के बोल, तीसरे में राग की सरगम तथा चौथे भाग में मृदंग के बोलों की एक छोटी सी परन होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कंठ एवं वाद्य संगीत का सम्बन्ध आदि काल से ही चला आ रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सभ्यता के आरम्भ में इसका रूप अविकसित रहा होगा। परन्तु मानव सभ्यता के साथ–साथ विभिन्न काल खण्डों में इसका विकास होता गया तथा इसका स्वरूप निखरता गया। आधुनिक काल में तो इन दोनों में परस्पर सम्बन्ध इस हद तक बढ़ गया है कि बिना किसी वाद्य के सहयोग के कंठ संगीत की कल्पना नहीं की जा सकती। चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो या लोक संगीत, चित्रपट संगीत हो या सुगम संगीत, इनमें वाद्यों का समावेश होना बड़ा जरूरी है तभी कंठ संगीत में पूर्णता आती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संगीत रत्नाकर, संगीत मकरंद, संगीत दर्पण (संगीत परिभाषा)
2. नाट्यशास्त्र 4/260–65
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र – 2/27
4. डा. लाल मणि मिश्र – भारतीय संगीत वाद्य, पृ.सं. 5
5. उमेश जोशी – भारतीय संगीत वाद्य, पृ.सं. 5
6. भारतीय संगीत का इतिहास – पृ. सं. 45
7. इण्डियन कल्चर – भाग–4, सं. 2, पृ. सं. 153
8. डा. शरद परांजये – भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. सं. 128
9. डा. शरद परांजये – भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. सं. 213
10. आचार्य बृहस्पति – मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ. सं. 29